International Journal of Information Movement Vol.2 Issue I (May 2017)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 52-64

परांकुशाचार्य कृत ध्रुव-चरित्र का विश्लेषणात्मक अध्ययन

सुबोध कुमार शांडिल्य
शोधार्थी(हिन्दी विभाग)
म० वि०, बोधगया
Email: subodhshandilya012@gmail.com

ध्रुव-चरित्र स्वामी परांकुशाचार्य की एक गीतात्मक रचना है। उन्होंने पौराणिक आख्यान को गीतात्मकता प्रदान करते हुए उसमें मौलिकता का आधान किया है। ध्रुव-चरित्र श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कंध में सविस्तार वर्णित है। वे शास्त्रों के सच्चे पारखी थे। उन्होनें शास्त्रों में अन्वित तत्त्वों को मन-मानस में रखते हुए ध्रुव-चरित्र को लोक-सुलभ भाषाओं में प्रस्तुत किया है, ताकि आमजन इस पावन चरित्र का श्रवन-भजन-मनन कर स्वयं के जीवन को परमात्मतत्त्व में लगाकर अपने को कृतार्थ कर सकें। महर्षि व्यास ने इस दिव्य एवं अलौकिक चरित्र के माध्यम से निम्नलिखित लोकग्राह्य संदेशों को प्रकाशित किया है। यथा:-राजा की कामांधता नाश का कारण बनती है, सवतिया डाह घर-परिवार में अशांति का सृजन करती है, भक्तिमार्ग में आयु की सीमा नहीं होती, कठोर तप के बल पर परमात्मा को भी आने के लिए विवश किया जा सकता है। संत समागम का अमोघ प्रभाव होता है तथा सकाम भक्ति निष्काम भक्ति से न्यून होती है।

स्वामी पराङ्कुशाचार्य ध्रुव-चरित्र की शुरुआत माता की महिमा के गुणगान के साथ की है। वे ज्ञानी संत थे। वे माँ के ममत्व एवं महत्त्व को बखूबी समझते थे। वे जानते थे कि माता मित्र और गुरु भी होती है। माता के सान्निध्य में असम्भव को भी सम्भव किया जा सकता है। यही कारण है कि वे लिखते हैं:-

'माता सुयोग्य पाकर सुत क्या न कर सके?'

स्वामी जी कहते है कि अंजनी के प्रताप से हनुमान लंका को जला सके, नारद से ज्ञान पाकर कयाधू ने प्रहलाद जैसा पुत्र रत्न उत्पन्न किया, महान् माता पृथा के कारण ही पार्थ का आगमन हुआ, जो गीता का ज्ञान पाकर अतिशय सुन्दर हुए। सुन्दर सुनीति माता के कारण ही पाँच वर्ष का बालक ध्रुव हरिचरण का ध्यान कर सका। नियम-वर्त पूर्वक अदिति ने पुत्र को जन्म दिया, जिसके कारण उन्चास खण्ड होने पर भी उसके पुत्र का नाश नहीं हुआ। इसके साथ ही स्वामी जी ने माता के कुलदोष के प्रभाव का भी वर्णन किया है, जो संतान के लिए प्रगति का कारण नहीं बनकर अगति व् नाश का कारण बनता है। यथा:-

'माता के कुलदोष से नृप वेणु अस भये।

एक मैं हूँ जगदीश्वर, ईश्वर न मान के।।'[i]

ध्यातव्य है कि राजा वेणु जो सुनीथा एवं अंग का पुत्र था, बड़ा दुष्ट एवं अत्याचारी था। वह कहता था कि जगत् का मालिक मैं ही हूँ, इसलिए मुझे भज। वेणु में यह गुण अधर्म के वंश में उत्पन हुए अपने नाना 'मृत्यु' का अनुगामी होने के कारण आया। उसकी माता सुनीथा मृत्यु की ही पुत्री थी।

[भागवत चतुर्थ स्कंध, अध्याय-14 श्लोक-39 में वर्णित]

स्वामी जी तत्पश्चात् मनु पुत्र उत्तानपाद, उनकी दोनों पत्नियाँ सुनीति एवं सुरुचि तथा पुत्र ध्रुव व उत्तम का परिचय देते हुए सुरुचि में विशेष अनुरक्त राजा की कामान्धता के कारण न्याय पथ से विचलन के साथ-साथ ध्रुव का पिता की गोद में बैठने की निरीह चाह को बड़े ही सहजता से व्यंजित करते हैं।

'बाबूजी लो गोद हमें भी,
भोलो सूरत में अकड़ा।
राजा किंकर्त्तव्य मूढ़,
रानी भय नेक न बोल सके।
अत्याचार किये अतिशय वे,
जो न हृदय पट खोल सके।'[ii]

स्वामी जी रजोगुण का फल बताते हुए कहते हैं कि जो राजा दुष्ट घरनी के चक्कर में पड़ता है, उसका पतन निश्चित है। यथा: –

'राजा ऐसे होते ही हैं
घरनी जिनको ठगती ही है
दूषण से बचते न कभी वे
अपने अयसी बनते ही हैं।'[iii]

रानी सुरुचि की सवतिया डाह और ध्रुव के प्रति उसकी कुत्सित दृष्टि को स्वामी जी नें निम्न पदों के माध्यम से वाणी दी है।

'सौत-पुत्र ध्रुव को लखकर
वह भृकुटी तक बक-बक करती
सुरुचि झटक ध्रुव को कहती
हीन और कटु वचन महा।'[iv]

सुरुचि को अपने पुत्र उत्तम के प्रति तो अगाध स्नेह है, लेकिन एक विमाता के रूप में वह ध्रुव से नफरत करती है तथा चाहती है कि ध्रुव पिता के आसपास भूलवश भी भटक न सके।

'रे बालक अनजान कहा तुम
जात पिता के कोरे में ।
चल-चल हट-हट दूर-दूर हो
उधर न जाना भोरे में ।'[v]

इतना ही नहीं वह अपने को बडभागी समझती है, क्योंकि सुनीति को निरादर कर राजा नें जो उसे अगाध प्रेम दिया है, तभी तो वह कहती है :-

'रे ध्रुव मेरा पुत्र तुम नहीं
कर हिसका मत उत्तम का ।
चाहो मेरा सुत बनना तो
ध्यान करो पुरुषोत्तम का ।'[vi]

उक्त पद में सुरुचि की अहम् भावना का भी प्रस्फुटन हुआ है। यदि ऐसा नहीं होता तो वो अपनी कोख से जनन को ईश्वर की विशेष अनुकम्पा नहीं समझती। साथ ही प्रकारान्तर से प्रभु से लौ लगाने की संदेश भी देती है।

श्री स्वामी जी पिता की गोद से वंचित्त एवं विमाता द्वारा अपमानित ध्रुव की मनः स्थिति की तुलना उस नाग से की है, जो शीश पर चाप पड़ते ही फुंफकार उठता है और ध्रुव में तो क्षत्रियों का तेज है।

'ध्रुव में क्षत्रि का तेज रहा
अपमान भला सहता कैसे।
ज्यों नाग शीश पर चांप पड़ी
लम्बी श्वांसा लेता तैसे।'[vii]

ध्रुव विमाता के कठोर वचनों से घायल होकर रो पड़ता है तथा फफकते हुए अपनी माँ सुनीति के पास आता है। माता सुनीति इस अवस्था में पुत्र को देखकर व्याकुल हो उठती है तथा इस दुर्दशा का कारण पूछती है। माता द्वारा पूछे जाने पर ध्रुव का बाल सुलभ मन सबकुछ साफ़-साफ़ बता देता है। सुनते ही सुनीति अधीर हो उठती है। आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। नेत्र से अश्रु की धार प्रवाहित होने लगती है। तभी करुणा की प्रतिमूर्ति माँ सुनीति ध्रुव को अपने अंको में भरकर बार-बार सुत का मुख चुम्बन करती है, मानो पुत्र को अभय प्रदान कर रही हो। यथा:-

'आँसू की धार चली बहकर,
अंधियाली आँखों में छाई।
सुत को छाती से लिपटाकर,
ममता की पुतली सी रानी।

धीरज धर सुत मुख चूम-चूम
बोली कल्याणमयी वाणी।'[viii]

स्वामी जी द्वारा मर्माहत माता सुनीति के करुणासंवलित वाणी को मगही में रचित्त एक अष्टपदीय गीत के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इस अष्टपदीय गीत में जो ध्रुव चरित्र के पृष्ठ संख्या-04 में वर्णित है, मुख्यतः तीन तत्त्वों का उद्भावना हुआ है- (1) गीतोक्त कर्म-सिद्धांत (2) पदपंकज-प्रेम और (3) एक आर्य ललना का महनीय और मंगलकारी विचार। आगे इन तीनों तत्त्वों पर एक-एक कर विचार करना अपेक्षित होगा।

(1) **गीतोक्त कर्म सिद्धांत**:- लीला पुरुषोत्तम कृष्ण नें गीता में कहा है कि मनुष्य का कोई भी क्षण कर्म से रहित नहीं होता है। सभी प्राणी प्रकृति के तीन गुणों (सत्त्व, रज और तम) के अधीन परवश होकर कर्म करते हैं। बिना कर्म के कोई रह ही नहीं सकता। गीता के अनुसार मनुष्य को केवल कर्म करने का अधिकार है, उसके फल पर नहीं। भगवान् कृष्ण कर्म, अकर्म और विकर्म- इन तीन रूपों का उपदेश देते हैं और निष्काम कर्म पर बल देते हैं। पुराणों में कर्म सिद्धांत का उदातीकरण किया गया है। भगवान् ही कर्मो के हेतुभूत रूप हैं। वहीं कर्मों का नियामक हैं। देही जीव कर्म का भोक्ता है। सारे जीव कर्म अनुसार फल भोगते हैं, क्योंकि शुभाशुभ कर्मों का करोड़ो कल्पों में भी नाश नहीं होता है। मनुष्य कर्म से देव, कर्म से मनुष्य, कर्म से पशु, कर्म से राजा और कर्म से दरिद्र बनता है। कर्म से ही दुःख और कर्म से ही सुख की प्राप्ति होती है। कर्मशक्ति का नाश नहीं होता है। कर्मशक्ति की प्रवाह में निरंतरता होती है। आध्यात्मिक दृष्टि से इस कर्म प्रवाह की अविरल धरा को जन्म-मरण का चक्र या संसार कहते हैं। कर्म की गति अत्यंत गहन है, अविज्ञेय है।

ध्रुव की माता सुनीति कर्म की विलक्षण गति की ओर ध्यान आकृष्ट करती है –

'बाबू हो करमगति मेटे से मिटात नाही,
कैसे के बुझाऊँबाबू कैसे समझाऊँ हो।'

स्वामी जी कर्म-गति की विलक्षणता को पौराणिक दृष्टान्तों से पुष्ट करते हैं। शिवजी अपने मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करते हैं, परन्तु उन्हें हलाहल का पान करना पड़ता है। समुद्र स्वयं रत्नों का आकर अर्थात् खान है, परन्तु उसका पुत्र शंख घर-घर भीख मांगता है। यही कर्म-गति की विलक्षणता है, रहस्य है। स्वामी जी के शब्दों में –

'बहत सुधाकर के पियत हलाहल के,
लाला ये करम फल कहलो न जाए हो।
पुत रत्नाकर के घर-घर भीख मांगे,
बबुआ करम देखो लख न लखाए हो।'[ix]

(2) **प्रभु पद-पंकज में प्रेम :-** इस अष्टपदीय गीत में माता सुनीति अपने पुत्र ध्रुव को प्रभु के चरणारविंद में गति-रति करने का उपदेश देती है। प्रभु के चरण-कमल संसार-सागर को पार करने के लिए नौका है। श्री हरि के चरण ही सेवन करने योग्य है, वे ही संतों के द्वारा बार-बार सेवित तथा भव-सागर से पार होने के लिए सार वस्तु है। इसलिए मनुष्य को उन चरणों का आश्रय लेना चाहिए। महामुनि सुकदेव का सुचिंतित अभिमत है कि जिन्होंने पुण्यकीर्ति मुकुंद-मुरारी के पद-पल्लव की नौका का आश्रय लिया है, जो कि सत्पुरुषों का सर्वस्व है, उनके लिए यह भव-सागर बछड़े के खुर के गढ़े के समान है। उन्हें परमपद की प्राप्ति हो जाती है और उनके लिए विपत्तियों का निवासस्थान (संसार) नहीं रहता।

'समाश्रिता ये पद्पल्लवप्लवं
महत्त्वपद्मं पुण्ययशो मुरारे।
भावाम्बुधिर्वत्सपदम् परं पदं
पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्।।'

[श्रीमद्भागवत 10/14/58]

उपर्युक्त शास्त्रीय वचनों को सुनीति के माध्यम से इस प्रकार निवेशित किया गया है –

'हमहु कहती बाबू मन में विचार देखु,
हरि चरणन सेई सकल बनाऊ हो।
जे हि चरणन सेई ब्रह्म इन्द्र रूद्र पद,
पाई-पाई धन्य होहिं तिनहीं मनाउ हो।
छोडू बाबू सब सुख मान अपमान सब,
अब भगवत् पद तुम अपनाऊ हो।'[x]

(3) **आर्य ललना का महनीय विचार :-** सामान्यतः यह देखा जाता है कि माता-पिता अपनी संतानों को अर्थ एवं काम के लिए ही प्रेरित एवं प्रवृत्त करते हैं। विशेषतः वे अपने बालकों को अर्थोपार्जन एवं उदरपूर्ति की युक्ति ही बताते हैं। लेकिन धन्य हैं, वे माता-पिता जो अपने पुत्रों को भगवत्-सेवा में लगने का

मंत्र देते हैं। भारतीय इतिहास में ऐसी ललनाओं के वहुशः दृष्टांत मिलते हैं, जिन्होंने अपने बालकों को प्रभु-भक्ति के लिए अभिप्रेरित किया है। इनमें उपासना स्वरूपा माता सुमित्रा को प्रथम पंक्ति में स्थान दिया जाता है। वे अपने पुत्र लक्ष्मण को न केवल श्रीराम की सेवा में भेजती है, वरन् उन्हें यह भी उपदेश देती है कि राग, रोष, इर्ष्या, मद, मोहादि को त्यागकर पूरी निष्ठा के साथ सीतारामजी की सेवा करें। इस सम्बन्ध में श्री रामचरितमानस की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है–

'सकल प्रकार विकार बिहाई ।
मनक्रम बचन करेहु सेवकाई ।'

ऐसी ही भारतीय ललनाओं में माता सुनीति का भी नाम श्रद्धा और सम्मान के साथ लिया जाता है। वास्तव में इस अष्टपदीय गीत ध्रुव-चरित्र का केंद्र बिंदु है, जहाँ से ध्रुव ऊर्जा प्राप्त कर बाद में परमपद का अधिकारी बनता है।

माता सुनीति की अमृतमयी वाणी सुनकर ध्रुव माँ की गोद से उतरकर चरण पर गिर पड़ा। उसका मोह जाता रहा तथा भगवत्कृपा पाने के लिए उद्धत हो उठा। वह माता से आशीर्वाद प्राप्त कर वन को जाना चाहता है, क्योंकि उसके हृदय में भगवान् के प्रति श्रद्धा उमड़ पड़ी है।

'दे माता शुभ आशीष हमें,
आज्ञा धर शीश चलूं वन में,
रह के भगवत् पद सेवन में,
है श्रद्धा उमड़ पड़ी मन में।'[xi]

शास्त्र सम्मत है कि जिस पर भगवान् का अनुग्रह होता है, उसकी विघ्न-बाधा दूर हो जाती है तथा वह ज्ञानियों की श्रेणी में गिना जाता है। स्वामी जी के शब्दों में –

'ईश्वर जिसको अपनाता है ।
सो तुरत द्वीज बन जाता है ।
x xx
जिसको वह जगत् भगाता है ।
तिसको भगवत् अपनाता है ।'[xii]

माता का आशीर्वाद प्राप्त कर ध्रुव जैसे ही वन को जाना चाहता है, माता सुनीति व्याकुल हो उठती है। कहा गया है कि जिस व्यक्ति से जिसका जितना अधिक आत्मीय सम्बंध होता है, उतना ही अनिष्ट की आशंका ज्यादा होती है। कामायनीकार प्रसाद जी ने भी

लिखा है- 'स्वजन-स्नेह में भय की कितनी आशंकाएँ उठ आती'। सूरदास ने भी वात्सल्य चित्रण में माँ यशोदा की व्यथा को इस प्रकार वाणी दी है –

'दूरी खेलन जनि जाहु लला रे, मारैगी काहु की गैया'।[xiii]

स्वामी जी ने भी माँ सुनीति के हृदय में उठ रहे अनिष्ट की आशंका को कुछ इस प्रकार शब्द दी है –

'बाबू दुर्बल अधिक तोर गात, गरम शीत बात
सहब बन जात, मनहीं अकुलात
यही से डरात हो लाल।'[xiv]

सभी सद्ग्रंथो की मान्यता है कि जो भगवन्मार्ग पर अग्रसर कर दे वहीं सच्चा हितैषी है तथा जो संसार की संसारिकता में उलझा कर चित्तवृत्तिओं को दिग्भ्रमित कर दे वही शत्रु है। यथा: –

'है जननी जनक सो जो, भगवत् में लगा दे,
वह परम मित्र सो जो भगवत् में लगा दे ।
है पूज्य गुरु सो जो, भगवत् में लगा दे,
जल्लाद है वही जो इस जग में फंसा दे ।'

अनन्त श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य ने मोह-मग्न माता सुनीति की मनःस्थिति का चित्रण जिस मगही गीत के माध्यम से किया है, उसमे एक पति से त्याज्य नारी की आकुलता का दर्शन तो होता ही है, साथ में एक अबला नारी की नैहर/पीहर से सहारा के आश्रय का भी दर्शन होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि नैहर/पीहर के प्रति नारी का विशेष लगाव होता है, जो लाजमी भी है। स्वामी जी के शब्दों में –

'बाबू जनवन वनचरवा, तु पाँच बरस का,
पिता तोरे ऐसे त्यागे, घर में न मन लागे,
लाला तुम रहा ममहरवा। तु पाँच ---
मामु तोरा प्यार करे नानी ले दुलार करे,
सब सुख तोरे ननिहरवा। तु पाँच ---'

यह ध्रुव सत्य है कि भावी प्रबल है। माँ सुनीति के मन के अन्तर्द्वंद पर विराम लगाते हुए ध्रुव वन जाने को तैयार होता है। माँ उसे आशीर्वाद देती है –

'भगवान् सदा कल्याण करै,
सब देवन हूँ सम्मान करै ।
x x x
ग्रह तोहिं सदा शुभदान करै ।'

माँ, माता के साथ-साथ गुरु भी होती है। इस रूप में माँ का आशीर्वाद और उपदेश दोनों फलदायी होता है। माता सुनीति ध्रुव को आशीर्वाद देने बाद उपदेश देती है –

'कबहूँ घर का सुध ना करना,
चित्त दे प्रभु की सेवा करना ।
x xx
भगवत् पद जो अपनाता है,
x xx
वह चार पदारथ पाता है,
हरि के प्रियतम बन जाता है।'[xv]

माता सुनीति से आशीर्वचन व् उपदेश प्राप्त कर पाँच वर्षीय बालक ध्रुव वन के लिए प्रस्थान करता है। रास्ते में देवर्षि नारद से साक्षात्कार होता है। ध्रुव प्रणाम कर देवर्षि नारद से भगवत् प्राप्ति हेतु उपाय सुझाने का निवेदन करता है। यथा: –

'वह राह बतावहु जी हमही,
जिसमें भगवान् मिले हमही।'

देवर्षि नारद बहुविधि ध्रुव को समझाते है कि घर को लौट जाओ क्योंकि तुम्हारी अवस्था अभी तप करने की नहीं है। जंगल में विविध प्रकार के हिंसक पशु रहते हैं, जो मनुज को खा जाते हैं। तुम्हारी उम्र खेलने-कूदने की है। आवेशवश दुरासाध्य भगवत् पद पाने के लिए हठ नहीं करो। योगी व् तपस्वी कठोर तप कर भी भगवान् की प्राप्ति नहीं कर पाते है। अतः हठ त्यागकर वापस लौट जाओ। इसी भाव को स्वामी जी निम्न शब्दों में व्यक्त करते हैं –

'दुरासाध्य भगवत् पद है ध्रुव लौट जा घर को,
x xx
योगी जन निशि वासर खोजत सो कबहूँ नहीं पावे,
ज्ञानी से जो दूर रहत है तुम कैसे के पावै ।'

महर्षि नारद के लाख समझाने के बावजूद भी ध्रुव नहीं मानता है। कहा भी गया है कि तन का घाव भर जाता है, लेकिन मन का घाव नहीं भरता है। वह हृदय को सालते रहता है। उसकी चुभन सर्वदा महशूश होती रहती है। ध्रुव को भी विमाता के कठोर वचन से ऐसा ही घाव हुआ है –

'तीर गोली का घाव तन से जाता है,
घोर दुखद विषाद भी मन से जाता है ।
कठिन वचन का घाव न मन से जाता है,
सो यह ध्रुव का इतिहास ही बताता है ।'[xvi]

महर्षि नारद के समझाने के बाद भी ध्रुव अपने दृढ़ निश्चय पर अडिग रहता है। वह कहता है कि चाहे कुछ भी हो जाए पर घर नहीं लौटूंगा। दृढ़ निश्चयी बालक ध्रुव के भगवत् के प्रति अटल स्नेह के आगे नारद को झुकना पड़ता है। ध्रुव नारद द्वारा ली गयी परीक्षा में सफल होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे हनुमान सुरसा द्वारा ली गयी परीक्षा में सफल हुए थे। ध्रुव में क्षत्रीय का तेज और माता सुनीति के उपदेश एवं आशीर्वाद का फल रहा कि वह भगवत् प्राप्ति के मार्ग से पीछे नहीं मुड़ा। फलतः महर्षि नारद को भगवत् प्राप्ति का मार्ग सुझाना पड़ा। उन्होंने उपदेश देते हुए ध्रुव से कहा कि मधुवन(मथुरा) में जाकर श्री हरि का ध्यान शांतचित्त से करो, उनकी कल्याणमयी-दिव्य-छवि को हृदय में बैठा कर द्वादश मंत्र का जाप करो। इसी भाव को स्वामी जी ने इस प्रकार प्रकट किया है –

'जो तुम भगवान् का दर्शन किया चाहो,
परमप्रेम से हरि को ध्यान यो धरो ।
x xx
मंत्र द्वादशाक्षर की जाप नित्य करो,
मधुवन में जाकर तुम काम यह करो ।'

सूरसागर में सूरदास नें भी कुछ इसी तरह का भाव संप्रेषित किया है –

'मथुरा जाई सु सुमिरन करौ। हरि को ध्यान हृदय में धरो ।
द्वादश अच्छर मंत्र सुनायौ। और चतुर्भुज रूप बतायौ।'[xvii]

महर्षि नारद का उपदेश सुनकर ध्रुव मधुवन के लिए प्रस्थान कर जाता है। स्वामी जी ने मधुवन गमन के प्रसंग को एक कीर्तन के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जो मनोहारी तो है ही, साथ में उसमे शुभ कार्य प्रारम्भ करने के सन्दर्भ में मंगलकारी शकुन का भी संकेत किया है, जो सनातान संस्कृति की विशेषता है –

'आगे में गईया पिलाती, दही लिए जाती,
सुहागिनी गाती, बाल खेलाती, कहत हरि जै जै जै।'

तत्पश्चात् स्वामी जी मधुवन अर्थात् मथुरा के महत्त्व को रेखांकित करते हैं। यह वहीं पावन भूमि है, जहाँ भगवान् श्री कृष्ण अपनी गायों को चराया करते थे तथा मुनिजन तृण बनकर छाए थे। मधुवन के रज-कण को कोई बडभागी ही पाते थे। अतः ध्रुव आनंदित है और कहता है –

"पाप मथन के कारण से मथुरा कहलाये,
तेहि कारण गुरुदेव हमें इहवाँ पठवाये ।"

मधुवन पहुंचकर ध्रुव कालिंदी के तट पर आसन जमा लेता है। वह यमुना जी में स्नान कर पूजन करता है और उपवास करता है। ध्यातव्य है कि श्रीमद्भागवत में पाँच मास ध्यान लगाने का वर्णन है, जबकि स्वामी जी छः मास का उल्लेख करते हैं। इस अवधि में ध्रुव विविध विधियों से ध्यान लगाता है तथा अल्पाहार से प्रारम्भ कर आहार का निषेध कर देता है। इस प्रकार के समाधि का गुणगान सभी करते हैं।

'यह निरोध-प्रेमा भक्ति को, लक्षण मुनिजन गाते हैं,
वैदिक लौकिक क्रिया कर्म सब, आप आप छुट जाते हैं ।'

ध्रुव की घोर तपस्या के फलस्वरूप समस्त लोक एवं लोकपालों में हलचल होने लगी। सभी घबरा गए तथा सभी का श्वास-प्रवास रुक गया। सभी श्री हरि की शरण में गए। भगवान् शरणागत वत्सल हैं। अतः वे मथुरा पधार कर देवताओं के भय का हरण करते हैं। स्वामी जी ने समाधिस्थ ध्रुव का समाधि भंग करने हेतु भूतों-प्रेतों के डरावने करतूत के साथ-साथ जंगली पशुओं यथा:, बाघ-सिंहादि का ध्रुव के प्रति प्रेम का भी योजना की है, जो उनका मौलिक चिंतन है।

'काटू-काटू कह खाऊं-खाऊं सब, भीम रूप दिखलाते हैं,
प्रेत-भूत सब विविध भाँति से, मारू-मारू गुहराते हैं ।
x x x
उस ध्रुव को लख बाघ-सिंह आते हैं,
पर बैर छाड़ प्रेम को बढाते हैं ।'[xviii]

स्वामी जी ध्रुव में दृढ़ता और अलौकिक शक्ति के संधारण का भी वर्णन करते हैं। उन्होंने इसके लिए चार कारकों को जिम्मेवार मानते हैं – (1) स्वयंभू मनु के वंश का प्रभाव (2) माता के पवित्र संस्कार (3) नारद जैसे गुरु का दर्शन एवं (4) उपदेश का प्रभाव। रामानंद सागर द्वारा निर्देशित रामायण में भी कौशल्या राम से पूछती है कि पुत्र मेरे मन में एक संशय है 'तुम मेरा पुत्र राम हो या भगवान्?' इस प्रश्न के उत्तर में राम कहते हैं कि यदि माता की कृपा और आशीर्वाद हो तो पुत्र भगवान् भी हो सकता है। स्वामी जी ध्रुव-चरित्र के माध्यम से उक्त आशय को ही संप्रेषित किया है, जिसका दिग्दर्शन यहाँ होता है। स्वामी जी कहते है कि उक्त चारों के प्रभाव का ही परिणाम है कि ध्रुव को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो रहा है। यथा:–

'मनु स्वयंभू वंश का प्रभाव आ रहा,
माता हृदय पवित्र संस्कार छा रहा,
नारद के दर्शन के बड़ पुण्य भी रहा,
तैसेहिं सदुपदेश से पवित्र मन रहा,

यह चारों ही मिलकर वह चार दे रहा'[xix]

स्वामी जी तपस्यारत ध्रुव के मानस-पटल पर उभरते विभिन्न बिम्बों का भी वर्णन किया है। ध्रुव को मूर्ति द्वारा हृदय में भगवान् का दर्शन तथा षोडशोपचार द्वारा श्री हरि का मानसिक पूजन करना भी वर्णित हैं।

'कही दिनकर कही निशिकर कही विद्युत चमकते,
कही हैमि कही रजनी कही उड़गन दमकते,
x x x
अर्घ्यादी उपचार सकल मन ही मन करते
x x x
दे आचमन प्रेम कर्पूर निराजन करते,
तुलसीदल ले सहस्र नाम से अर्चन करते ।'

तदुपरांत स्वामी जी भगवान् की दीन वत्सलता का गुणगान करते हैं –

'भीलनी को मैया कहके तुम,
जूठे बैर चबाये हो।
यो बिदुरानी कर केले के,
तुम छिलके भोग लगाये हो।
यह गुण गण से भगवान् सदा,
तुम दीनबंधु कहलाये हो ।'

भक्त वत्सल भगवान् श्री हरि की असीम कृपा ध्रुव पर होता है तथा उसे सप्तर्षियों, नवग्रहों से ऊपर स्थान प्राप्त होने का वरदान मिलता है। साथ ही छतीस हजार वर्ष तक पृथ्वी पर धर्म पूर्वक राज करने का भी आशीर्वाद मिलता है। इतना ही नहीं, ध्रुव को सांसारिक विघ्न-बाधाओं से विजय प्राप्त कर दिव्य विरजा नदी[xx] पार कर वैकुण्ठलोक आने का भी निमंत्रण श्री हरि से मिलता है। स्वामी जी के शब्दों में –

'सूर्य चन्द्र औ भौम बुधो गुरु सुकर नहीं जो पा सकते,
x x x
ता ऊपर स्थान मनोहर है तहवाँ तुम्हरे रखते,
विरजा दिव्य पार होकर तुम हमारी सेवा कर सकते,
छतीस सहस्र वर्ष भूमि पति होकर,
पिता अपमानी से सम्मानित होकर,
मातु कलही से भी पूजित होकर,
x x x
फिर आना भी बच्चा तुम्ह हमरे घर ।'

ध्रुव को जैसे ही श्री हरि द्वारा वरदान की प्राप्ति होती है, माता सुनीति को स्वप्न के माध्यम से भान हो जाता है। वह भोर के स्वप्न में देखती है कि ध्रुव हाथ में सफ़ेद पुष्प और गले में गजरा धारण किये हुए पूरब दिशा की ओर जा रहा है। पर्वत पर चढ़कर समर में दुश्मन को जीत लिया है तथा दिव्य संतों के साथ पिता के भवन में पधार चुका है। जब स्वप्न भंग होता है तो रानी सुनीति को आभास हो जाता है कि दुःख का अंत और सुख का साम्राज्य आने वाला है। स्वामी जी के शब्दों में –

'सुत चिंतन कर सुतली सुनीति देखेले ध्रुव के
भिनुसहरे सपनवा ।
श्वेत कुसुम कर गजरा पहिरले, तुरंग चढ़ी के
दिशि पूरब गवनवां ।
पर्वत चढ़ रिपु जीते समर में, गहले अपने
भगवत् के चरणवाँ ।
सुन्दर सन्तन के संग लेले, अईले अपने
पितु केर भवनवाँ ।
देखत सपन उठी जब रानी सपन फले हे
यह सुख के अवनवाँ।'[xxi]

इस पद में स्वामी जी ने स्वप्न अवस्था में ध्रुव की माता के लिए सुनीति शब्द का प्रयोग किया है, लेकिन स्वप्न भंग के बाद रानी शब्द का प्रयोग किया है, जो स्वामी जी के बेजोड़ दृष्टि का द्योतक है, क्योंकि पति से परित्यक्त सुनीति का पुरानी रानी वाली रुतवा की वापसी का संकेत है।

सद्ग्रंथों का शिक्षण है कि भगवान् के अनुकूल होने से सब अनुकूल हो जाता है। ध्रुव को भी भगवत् प्राप्ति हो चुकी है, अतः जो पिता मुख से बोलने से परहेज करता था, वह आगवानी कर घर ले जाता है। विमाता सुरुचि, जो ध्रुव को कठोर वचन से दुतकारती थी, वह गोदी में लेकर दुलार करती है। सुनीति अपने प्राणों से भी प्यारा पुत्र को गले लगाकर सारा संताप भूल जाती है। ध्रुव के गृह आगमन हेतु जगह-जगह चौके और रंगोली बनायी जाती है। दरवाजे-दरवाजे पर कलश स्थापित किये जाते हैं। राजा उत्तानपाद विप्रगण को बुलवाते हैं तथा सभी विधियों से पूजन कराकर ध्रुव को राज सिंहासन सौप देते हैं। मंगल गान होता है। स्वामी जी के शब्दों में –

'सोई उत्तानपाद ध्रुव के हित,
विप्र गणन बुलवाते हैं ।
सब विध उपचार करा करके,

शुभ सिंहासन बिठाते हैं ।'

ध्रुव के राज सिंहासन पर आसीन होते ही प्रजा के सभी दुःख-दर्द दूर हो जाते हैं। श्री हरि का परा प्रेम[xxii] से पूजन होने लगता है। प्रजाजनों में नित्य प्रेम की बढ़ोतरी होने लगती है। वैदिक धर्म-कर्म के कारण परस्पर स्नेह एवं सुख-समृद्धि में वृद्धि होती है। देव और मुनिगण प्रसन्न होते हैं। ध्रुव की सर्वत्र जय-जयकार होने लगती है।

इस प्रकार स्वामी जी ने ध्रुव चरित्र का वर्णन सरल ओर सहज शब्दों में करके ईश्वरीय भक्ति भावना को परिपुष्ट किया है। श्रीमद्भागवत् के क्लिष्ट श्लोकों को सरल-सुगम भाषा में अंकन कर सामान्य जनों को भी इस भक्तिपूर्ण चरित्र को हृदयंगम करा दिया है। यही कविकर्म की सफलता है।

4.0 संदर्भ

[i]ध्रुव-चरित्र, पृ०-01 से उद्धृत.
[ii]ध्रुव-चरित्र, पृ०-02 से उद्धृत.
[iii]ध्रुव-चरित्र, पृ०-02 से उद्धृत.
[iv]ध्रुव-चरित्र, पृ०-03 से उद्धृत.
[v]ध्रुव-चरित्र, पृ०-03 से उद्धृत.
[vi]ध्रुव-चरित्र, पृ०-03 से उद्धृत.
[vii]ध्रुव-चरित्र, पृ०-03 से उद्धृत.
[viii]ध्रुव-चरित्र, पृ०-04 से उद्धृत.
[ix]ध्रुव-चरित्र, पृ०-04 से उद्धृत.
[x]ध्रुव-चरित्र, पृ०-05 से उद्धृत.
[xi]ध्रुव-चरित्र, पृ०-05 से उद्धृत.
[xii]ध्रुव-चरित्र, पृ०-05 से उद्धृत.
[xiii]सूर की काव्य चेतना, लेखक- डॉ बलिराम तिवारी(अभिव्यक्ति प्रकाशन) पृष्ठ संख्या- ३० से साभार ।
[xiv]ध्रुव-चरित्र, पृ०-06 से उद्धृत.
[xv]ध्रुव-चरित्र, पृ०-08 से उद्धृत.
[xvi]ध्रुव-चरित्र, पृ०-10 से उद्धृत.
[xvii]ओइम् नमो भगवते वासुदेवाय, प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल के ध्रुव गीत से साभार, जो सूर सागर से ली गयी है।
[xviii]ध्रुव-चरित्र, पृ०-13-14 से उद्धृत.
[xix]ध्रुव-चरित्र, पृ०-13 से उद्धृत.
[xx]विरजा बैकुण्ठलोक की दिव्य पवित्र नदी है,जिसमें स्नान करने से प्राणी मात्र के सभी कष्ट दूर हो जाते हैं तथा प्राणी दिव्य चतुर्भुज शरीर धारण कर लेता है।
[xxi]ध्रुव-चरित्र, पृ०-17-18 से उद्धृत.
[xxii]भक्ति के दो प्रकार हैं- गौणी और परा। गौणी सामन्य जनों की भक्ति है, जबकि परा आध्यात्मिक और श्रेष्ठ भक्ति है। अनुकूल भाव से ईश्वर का स्मरण ही परा भक्ति है।